नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-४४

नंदीसूत्र

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-४४

आगमसूत्र-४४- 'नंदीसूत्र'

चूलिकासूत्र-१- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	अर्हत् संघ आदि स्तुति	०५	५	बुद्धि के आठ गुण + श्रुतग्रहण	२५
२	ज्ञान के विविध भेद	०९		------------------------------------	
३	बारह अंगसूत्रो का परिचय	२०	६	अनुज्ञा नंदी	२६
४	द्वादशांगी आराधना-विराधना फ़ल	२५	७	जोग नंदी	२७

४५ आगम वर्गीकरण

क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	---------------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं prin	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद prin	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય			
1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[४४] नन्दीसूत्र
चूलिका सूत्र-१- हिन्दी अनुवाद

सूत्र - १

संसार के तथा जीवोत्पत्तिस्थानों के ज्ञाता, जगद्गुरु, जीवों के लिए नन्दप्रदाता, प्राणियों के नाथ, विश्वबन्धु, लोक में पितामह स्वरूप अरिहन्त भगवान् सदा जयवन्त हैं ।

सूत्र - २

समग्र श्रुतज्ञान के मूलस्रोत, वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में अन्तिम, लोकों के गुरु महात्मा महावीर सदा जयवन्त हैं ।

सूत्र - ३

विश्व में ज्ञान का उद्योत करनेवाले, राग-द्वेष रूप शत्रुओं के विजेता, देवों-दानवों द्वारा वन्दनीय, कर्म-रज से विमुक्त भगवान् महावीर का सदैव भद्र हो ।

सूत्र - ४

गुणरूपी भवनों से व्याप्त, श्रुत रत्नों से पूरित, विशुद्ध सम्यक्त्व रूप वीथियों से युक्त, अतिचार रहित चारित्र के परकोटे से सुरक्षित, संघ-नगर ! तुम्हारा कल्याण हो ।

सूत्र - ५

संयम जिसकी नाभि है, तप आरक हैं, तथा सम्यक्त्व जिस की परिधि है; ऐसे संघचक्र को नमस्कार हो, जो अतुलनीय है । उस संघचक्र की सदा जय हो ।

सूत्र - ६

अठारह सहस्र शीलांग रूप पताका से युक्त, तप और संयम रूप अश्व जिसमें जुते हुए हैं, स्वाध्याय का मंगलमय मधुर घोष जिससे निकल रहा है, ऐसे भगवान् संघ-रथ का कल्याण हो ।

सूत्र – ७-८

जो संघ रूपी पद्म, कर्म-रज तथा जल-राशि से ऊपर उठा हुआ है–जिस का धार श्रुतरत्नमय दीर्घ नाल है, पाँच महाव्रत जिसकी सुदृढ़ कर्णिकाएँ हैं, उत्तरगुण जिसका पराग है, जो भावुक जनरूपी मधुकरों से घिरा हुआ है, तीर्थंकर रूप सूर्य के केवलज्ञान रूप तेज से विकसित है, श्रमणगण रूप हजार पाँखूड़ी वाले उस संघपद्म का सदा कल्याण हो ।

सूत्र - ९

हे तप प्रधान ! संयम रूप मृगचिह्नमय ! अक्रियावाद रूप राहु के मुख से सदैव दुर्द्धर्ष ! निरतिचार सम्यक्त्व चाँदनी से युक्त ! हे संघचन्द्र ! आप सदा जय प्राप्त करें ।

सूत्र - १०

एकान्तवादी, दुर्नयी परवादी रूप ग्रहाभा को निस्तेज करनेवाले, तप तेज से सदैव देदीप्यमान, सम्यग्ज्ञान से उजागर, उपशम-प्रधान संघ रूप सूर्य का कल्याण हो ।

सूत्र - ११

वृद्धिंगत आत्मिक परिणाम रूप बढ़ते हुए जल की वेला से परिव्याप्त है, जिसमें स्वाध्याय और शुभ योग रूप मगरमच्छ हैं, जो कर्मविदारण में महाशक्तिशाली है, निश्चल है तथा समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न एवं विस्तृत हैं, ऐसे संघ समुद्र का भद्र हो ।

सूत्र – १२-१७

संघमेरु की भूपीठिका सम्यग्दर्शन रूप श्रेष्ठ वज्रमयी है । सम्यक्-दर्शन सुदृढ आधार-शिला है । वह शंकादि दूषण रूप विवरों से रहित है । विशुद्ध अध्यवसायों से चिरंतन है । तत्त्व अभिरुचि से ठोस है, जीव आदि नव तत्त्वों में निमग्न होने के कारण गहरा है । उसमें उत्तर गुण रूप रत्न और मूल गुण स्वर्ण मेखला है । उसमें संघ-मेरु अलंकृत है । इन्द्रिय दमन रूप नियम ही उज्ज्वल स्वर्णमय शिलातल है । उदात्त चित्त ही उन्नत कूट हैं एवं शील रूपी सौरभ से परिव्याप्त संतोषरूपी मनोहर नन्दनवन है ।

संघ-सुमेरु में जीव-दया ही सुन्दर कन्दराएँ हैं । वे कन्दराएँ कर्मशत्रुओं को पराजित करनेवाले तेजस्वी मुनिगण रूपी सिंहों से आकीर्ण हैं और कुबुद्धि के निरास से सैकड़ों हेतु रूप धातुओं से संघ रूप सुमेरु भास्वर है तथा व्याख्यान-शाला रूप कन्दराएँ देदीप्यमान हो रही हैं । संघ-मेरु में संवर रूप जल के सतत प्रवहमान झरने ही शोभायमान हार हैं । तथा संघ-सुमेरु के श्रावकजन रूपी मयूरों के द्वारा आनन्द-विभोर मधुर ध्वनि से कंदरा रूप प्रवचनस्थल मुखरित हैं ।

विनय गुण से विनम्र उत्तम मुनिजन रूप विद्युत् की चमक से संघ-मेरु के शिखर सुशोभित हो रहे हैं । गुणों से सम्पन्न मुनिवर ही कल्पवृक्ष हैं, जो धर्म रूप फलों और ऋद्धि-रूप फूलों से युक्त हैं । ऐसे मुनिवरों से गच्छ-रूप वन परिव्याप्त है । मेरु पर्वत समान संघ की सम्यक्ज्ञान रूप श्रेष्ठ रत्न ही देदीप्यमान, मनोज्ञ, विमल वैडूर्यमयी चूलिका है । उस संघ रूप महामेरु गिरि के माहात्म्य को मैं विनयपूर्वक नम्रता के साथ वन्दना करता हूँ ।

सूत्र – १८-१९

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासु-पूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान को वन्दन करता हूँ

सूत्र – २०-२१

श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हुए हैं, इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास ।

सूत्र - २२

निर्वाण पथ का प्रदर्शक, सर्व भावों का प्ररूपक, कुदर्शनों के अहंकार का मर्दक जिनेन्द्र भगवान् का शासन सदा जयवन्त है ।

सूत्र - २३

भगवान् महावीर के पट्टधर शिष्य अग्निवेश्यायन गोत्रीय श्रीसुधर्मास्वामी काश्यपगोत्रीय श्रीजम्बूस्वामी, कात्यायनगोत्रीय श्रीप्रभव स्वामी तथा वत्सगोत्रीय श्री शय्यम्भवाचार्य को मैं वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २४

तुंगिक गोत्रीय यशोभद्र, माढरगोत्रीय भद्रबाहु तथा गौतम गोत्रीय स्थूलभद्र को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २५

एलापत्य गोत्रीय आचार्य महागिरि और सुहस्ती तथा कौशिक-गोत्रवाले बहुल मुनि के समान वय वाले बलिस्सह को भी वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २६

हारीत गोत्रीय स्वाति एवं श्यामार्य को तथा कौशिक गोत्रीय आर्य जीतधर शाण्डिल्य को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २७

तीनों दिशाओं में, समुद्र पर्यन्त, प्रसिद्ध कीर्तिवाले, विविध द्वीप समुद्रों में प्रामाणिकता प्राप्त, अक्षुब्ध समुद्र समान गंभीर आर्य समुद्र को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २८

अध्ययन-अध्यापन में रत, क्रियायुक्त, ध्याता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि का उद्योत करनेवाले तथा श्रुत-रूप सागर के पारगामी धीर आर्य मंगु को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - २९

आर्य धर्म, भद्रगुप्त, तप नियमादि गुणों से सम्पन्न वज्रवत् सुदृढ आर्य वज्र को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३०

जिन्होंने स्वयं के एवं अन्य सभी संयमियों के चारित्र सर्वस्व की रक्षा की तथा जिन्होंने रत्नों की पेटी के समान अनुयोग की रक्षा की, उन क्षपण-तपस्वीराज आर्यरक्षित को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३१

ज्ञान, दर्शन, तप और विनयादि गुणों में सर्वदा उद्यत तथा राग-द्वेष विहीन प्रसन्नमना, अनेक गुणों से सम्पन्न आर्य नन्दिल क्षपण को सिर नमाकर वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३२

व्याकरण निपुण, कर्मप्रकृति की प्ररूपणा करने में प्रधान, ऐसे आर्य नन्दिलक्षपण के पट्टधर शिष्य आर्य नागहस्ती का वाचक वंश मूर्तिमान् यशोवंश की तरह अभिवृद्धि को प्राप्त हो ।

सूत्र - ३३

उत्तम जाति के अंजन धातु के सदृश प्रभावोत्पादक, परिपक्व द्राक्षा और नील कमल के समान कांतियुक्त आर्य रेवतिनक्षत्र क वाचक वंश वृद्धि प्राप्त करे ।

सूत्र - ३४

जो अचलपुर में दीक्षित हुए और कालिक श्रुत की व्याख्या में से दक्ष तथा धीर थे, उत्तम वाचक पद को प्राप्त ऐसे ब्रह्मद्वीपिक शाखा के आर्य सिंह को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३५

जिनका यह अनुयोग आज भी दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में प्रचलित है, तथा अनेकानेक नगरों में जिनका सुयश फैला हुआ है, उन स्कन्दिलाचार्य को मैं वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३६

हिमवंत के सदृश विस्तृत क्षेत्र में विचरण करनेवाले महान् विक्रमशाली, अनन्त धैर्यवान् और पराक्रमी, अनन्त स्वाध्याय के धारक आर्य हिमवान् को मस्तक नमाकर वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३७

कालिक सूत्र सम्बन्धी अनुयोग और उत्पादन आदि पूर्वों के धारक, ऐसे हिमवन्त क्षमाश्रमण को और नागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ३८

मृदु, मार्दव, आर्जव आदि भवों से सम्पन्न, क्रम से वाचक पद को प्राप्त तथा ओघश्रुत का समाचरण करने वाले नागार्जुन वाचक को वन्दन करता हूँ ।

सूत्र – ३९-४१

तपे हुए स्वर्ण, चम्पक पुष्प या खिले हुए उत्तम जातीय कमल के गर्भ तुल्य गौर वर्णयुक्त, भव्यों के हृदय-वल्लभ, जन-मानस में करुणा भाव उत्पन्न करने में निपुण, धैर्यगुण सम्पन्न, दक्षिणार्द्ध भरत में युग प्रधान, बहुविध स्वाध्याय के परिज्ञाता, संयमी पुरुषों को यथायोग्य स्वाध्याय में नियुक्तिकर्ता तथा नागेन्द्र कुल की परम्परा की

अभिवृद्धि करनेवाले, सभी प्राणियों को उपदेश देने में निपुण और भव-भीति के विनाशक नागार्जुन ऋषि के शिष्य भूतदिन्न को मैं वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ४२

नित्यानित्य रूप से द्रव्यों को समीचीन रूप से जानने वाले, सम्यक् प्रकार से समझे हुए सूत्र और अर्थ के धारक तथा सर्वज्ञ-प्ररूपित सद्भावों का यथाविधि प्रतिपादन करने वाले लोहित्याचार्य को नमस्कार करता हूँ ।

सूत्र - ४३

शास्त्रों के अर्थ और महार्थ की खान के सदृश सुसाधुओं को आगमों की वाचना देते समय संतो, व समाधि का अनुभव करनेवाले, प्रकृति से मधुर, श्री दूष्यगणी को सम्मानपूर्वक वन्दन करता हूँ ।

सूत्र - ४४

प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न, सुकुमार, सुन्दर तलवे वाले और सैकड़ों प्रातच्छिकों द्वारा नमस्कृत, प्रवचनकार श्री दूष्यगणि के पूज्य चरणों को प्रणाम करता हूँ ।

सूत्र - ४५

इस अनुयोगधर स्थविरों और आचार्यों से अतिरिक्त अन्य जो भी कालिक सूत्रों के ज्ञाता और अनुयोगधर धीर आचार्य भगवन्त हुए हैं, उन सभी को प्रणाम करके (मैं देव वाचक) ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा ।

सूत्र - ४६

शेलघन-कुटक, चालनी, परिपूर्णक, हंस, महिष, मेष, मशक, जौंक, बिल्ली, जाहक, गौ, भेरी और आभीरी इनके समान श्रोताजन होते हैं ।

सूत्र - ४७

वह श्रोतासमूह तीन प्रकार का है । विज्ञपरिषद्, अविज्ञपरिषद् और दुर्विदग्ध परिषद् । उनमें विज्ञ-परिषद् इस प्रकार से है –

सूत्र - ४८

जैसे उत्तम जाति के राजहंस पानी को छोड़कर दूध का पान करते हैं, वैसे ही गुणसम्पन्न श्रोता दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करते हैं । हे शिष्य ! इसे ही ज्ञायिका परिषद् समझना ।

सूत्र - ४९

अज्ञायिका परिषद् इस प्रकार है –

सूत्र - ५०

जो श्रोता मृग, शेर और कुक्कुट के अबोध शिशुओं के सदृश स्वभाव से मधुर, भद्रहृदय होते हैं, उन्हें जैसी शिक्षा दी जाए वे उसे ग्रहण कर लेते हैं । वे असंस्कृत होते हैं ।

रत्नों को चाहे जैसा बनाया जा सकता है । ऐसे ही अनभिज्ञ श्रोताओं में यथेष्ट संस्कार डाले जा सकते हैं । हे शिष्य ! ऐसे अबोध जनों के समूह को अज्ञायिका परिषद् जानो ।

सूत्र - ५१

दुर्विदग्धा परिषद् का लक्षण–

सूत्र - ५२

अल्पज्ञ पंडित ज्ञान में अपूर्ण होता है, किन्तु अपमान के भय से किसी विद्वान् से कुछ पूछता नहीं । फिर भी अपनी प्रशंसा सुनकर मिथ्याभिमान से वस्ति की तरह फूला हुआ रहता है । ऐसे लोगों की सभा को, हे शिष्य ! दुर्विदग्धा सभा समझना ।

सूत्र - ५३

ज्ञान पाँच प्रकार का है । जैसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान ।

सूत्र - ५४

ज्ञान पाँच प्रकार के ज्ञान के संक्षिप्त में दो प्रकार हैं–प्रत्यक्ष और परोक्ष ।

सूत्र - ५५

–प्रत्यक्षज्ञान के दो भेद हैं, यथा-इन्द्रिय-प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष ।

सूत्र - ५६

–इन्द्रियप्रत्यक्ष पाँच प्रकार का है । यथा-श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष, घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष और स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष ।

सूत्र - ५७

नोइन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान तीन प्रकार का है । अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, मनःपर्यवज्ञानप्रत्यक्ष और केवलज्ञानप्रत्यक्ष ।

सूत्र - ५८

अवधिज्ञान प्रत्यक्ष के दो भेद हैं–भवप्रत्ययिक, क्षायोपशमिक ।

सूत्र - ५९

भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किन्हें होता है ? वह देवों एवं नारकों को होता है ।

सूत्र - ६०

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यों को तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों को होता है ।

भगवन् ! क्षायोपशमिक अवधिज्ञान की उत्पत्ति का हेतु क्या है ? –जो कर्म अवधिज्ञान में रुकावट उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें से उदयगत का क्षय होने से तथा अनुदित कर्मों का उपशम होने से जो उत्पन्न होता है ।

सूत्र - ६१

गुण-सम्पन्न मुनि को जो क्षायोपशमिक, अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है, वह संक्षेप में छह प्रकार का है । यथा-

आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपातिक और अप्रतिपातिक–

सूत्र - ६२

भगवन् ! वह आनुगामिक अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है । अन्तगत, मध्यगत । अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का है–पुरतःअन्तगत, मार्गतःअन्तगत, पार्श्वतःअन्तगत–

आगे से अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है ? जैसे कोई व्यक्ति दीपिका, घासफूस की पूलिका अथवा जलते हुए काष्ठ, मणि, प्रदीप या किसी पात्र में प्रज्वलित अग्नि रखकर हाथ अथवा दण्ड से उसे आगे करके क्रमशः आगे चलाता है और मार्ग में स्थित वस्तुओं को देखता जाता है । इसी प्रकार पुरतःअन्तगत अवधिज्ञान भी आगे के प्रदेश में प्रकाश करता हुआ साथ-साथ चलता है । मार्गतःअन्तगत अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? जैसे कोई व्यक्ति उल्का, तृणपूलिका, अग्रभाग से जलते हुए काष्ठ यावत् दण्ड द्वारा पीछे करके उक्त वस्तुओं के प्रकाश से पीछे-स्थित पदार्थों को देखता हुआ चलता है, उसी प्रकार जो ज्ञान पीछे के प्रदेश को प्रकाशित करता है वह मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान है ।

पार्श्व से अन्तगत अवधिज्ञान किसे कहते हैं ? जैसे कोई पुरुष दीपिका, चटुली, अग्रभाग से जलते हुए काठ को, मणि, प्रदीप या अग्नि को पार्श्वभाग से परिकर्षण करते हुए चलता है, इसी प्रकार यह अवधिज्ञान पार्श्ववर्ती पदार्थों का ज्ञान कराता हुआ आत्मा के साथ-साथ चलता है । यह अन्तगत अवधिज्ञान का कथन हुआ ।

भगवन् ! मध्यगत अवधिज्ञान कौन-सा है ? भद्र ! जैसे कोई पुरुष उल्का, तृणों की पूलिका, यावत्

शरावादि में रखी हुई अग्नि को मस्तक पर रखकर चलता है । इसी प्रकार चारों ओर के पदार्थों का ज्ञान कराते हुए जो ज्ञान ज्ञाता के साथ चलता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है ।

अन्तगत और मध्यगत अवधिज्ञान में क्या अंतर है ? पुरतः अवधिज्ञान से ज्ञाता सामने संख्यात अथवा असंख्यात योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है । मार्ग से-पीछे से अन्तगत अवधिज्ञान द्वारा पीछे से तथा पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान से पार्श्व में स्थित द्रव्यों को संख्यात अथवा असंख्यात योजनों तक जानता व देखता है । यह आनुगामिक अवधिज्ञान हुआ ।

सूत्र - ६३

भगवन् ! अनानुगामिक अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? जैसे कोई भी व्यक्ति एक बहुत बड़ा अग्नि का स्थान बनाकर उसमें अग्नि को प्रज्वलित करके उस अग्नि के चारों ओर सभी दिशा-विदिशाओं में घूमता है तथा उस ज्योति से प्रकाशित क्षेत्र को ही देखता है, अन्यत्र न जानता है और न देखता है । इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में उत्पन्न होता है, उसी क्षेत्र में स्थित होकर संख्यात एवं असंख्यात योजन तक, स्वावगाढ क्षेत्र से सम्बन्धित तथा असम्बन्धित द्रव्यों को जानता व देखता है । अन्यत्र जाने पर नहीं देखता ।

सूत्र - ६४

गुरुदेव ! वर्द्धमान अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? अध्यवसायस्थानों या विचारों के विशुद्ध एवं प्रशस्त होने पर और चारित्र की वृद्धि होने पर तथा विशुद्धमान चारित्र के द्वारा मल-कलङ्क से रहित होने पर आत्मा का ज्ञान दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर बढ़ता है उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

सूत्र - ६५

तीन समय के आहारक सूक्ष्म-निगोद के जीव की जितनी जघन्य अवगाहना होती है–उतने परिमाण में जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है ।

सूत्र - ६६

समस्त सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त अग्निकाय के सर्वाधिक जीव सर्व दिशाओं में निरन्तर जितना क्षेत्र परिपूर्ण करें, उतना ही क्षेत्र परमावधिज्ञान का निर्दिष्ट किया गया है ।

सूत्र - ६७

क्षेत्र और काल के आश्रित-अवधिज्ञानी यदि क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें या-संख्यातवें भाग को जानता है तो काल से भी आवलिका के असंख्यातवें या संख्यातवें भाग को जानता है ।

यदि अंगुलप्रमाण क्षेत्र देखे तो काल से आवलिका से कुछ कम देखे और यदि सम्पूर्ण आवलिका प्रमाण काल देखे तो क्षेत्र से अंगुलपृथक्त्व प्रमाण देखे ।

सूत्र - ६८

यदि क्षेत्र से एक हस्तपर्यंत देखे तो काल से एक मुहूर्त्त से कुछ न्यून देखे और काल से दिन से कुछ कम देखे तो क्षेत्र से एक गव्यूति परिमाण देखता है ।

यदि क्षेत्र से योजन परिमाण देखता है तो काल से दिवस पृथक्त्व देखता है । यदि काल से किञ्चित् न्यून पक्ष देखे तो क्षेत्र से पच्चीस योजन पर्यन्त देखता है ।

सूत्र - ६९

यदि क्षेत्र से सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को देखे तो काल से अर्धमास परिमित भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान, तीनों कालों को जाने। यदि क्षेत्र से जम्बूद्वीप पर्यन्त देखता है तो काल से एक मास से भी अधिक देखता है । यदि क्षेत्र से मनुष्यलोक परिमाण क्षेत्र देखे तो काल से एक वर्ष पर्यन्त भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल देखता है । यदि क्षेत्र से रुचक क्षेत्र पर्यन्त देखता है तो काल से पृथक्त्व भूत और भविष्यत् काल को जानता है ।

सूत्र - ७०

अवधिज्ञानी यदि काल से संख्यात काल को जाने तो क्षेत्र से भी संख्यात द्वीप-समुद्र पर्यन्त जानता है और असंख्यात काल जानने पर क्षेत्र से द्वीपों एवं समुद्रों की भजना जानना ।

सूत्र - ७१

काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों की अवश्य वृद्धि होती है । क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की भजना है । द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल भजनीय होते हैं ।

सूत्र - ७२

काल सूक्ष्म होता है किन्तु क्षेत्र उससे भी सूक्ष्म होता है, क्योंकि एक अङ्गुल मात्र श्रेणी रूप क्षेत्र में आकाश के प्रदेश असंख्यात अवसर्पिणियों के समय जितने होते हैं ।

सूत्र - ७३

यह वर्द्धमानक अवधिज्ञान का वर्णन है ।

सूत्र – ७४-७५

भगवन् ! हीयमान अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? अप्रशस्त-विचारों में वर्तने वाले अविरति सम्यक्दृष्टि जीव तथा अप्रशस्त अध्यवसाय में वर्तमान देशविरति और सर्वविरति-चारित्र वाला श्रावक या साधु जब अशुभ विचारों से संक्लेश को प्राप्त होता है तथा उसके चारित्र में संक्लेश होता है तब सब ओर से तथा सब प्रकार से अवधिज्ञान का पूर्व अवस्था से ह्रास होता है । इस प्रकार हानि को प्राप्त अवधिज्ञान हीयमान अवधिज्ञान है ।

सूत्र - ७६

अप्रतिपाति अवधिज्ञान क्या है ? जिस ज्ञान से ज्ञाता अलोक के एक भी आकाश-प्रदेश को जानता है-वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है ।

सूत्र - ७७

अवधिज्ञान संक्षिप्त में चार प्रकार का है । यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से ।

द्रव्य से–अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्त रूपी द्रव्यों की और है । उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है ।

क्षेत्र से–अवधिज्ञानी जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्र को और उत्कृष्ट अलोक में लोकपरिमित असंख्यात खण्डों को जानता-देखता है ।

काल से-अवधिज्ञानी जघन्य-एक आवलिका के असंख्यातवें भाग काल को और उत्कृष्ट-अतीत और अनागत-असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण काल को जानता व देखता है ।

भाव से–अवधिज्ञानी जघन्यतः और उत्कृष्ट भी अनन्त भावों को जानता-देखता है । किन्तु सर्व भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है ।

सूत्र - ७८

–यह अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक दो प्रकार से है । और उसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप से बहुत-से विकल्प हैं ।

सूत्र - ७९

नारक, देव एवं तीर्थंकर अवधिज्ञान से युक्त ही होते हैं और वे सब दिशाओं तथा विदिशाओं में देखते हैं । मनुष्य एवं तिर्यंच ही देश से देखते हैं ।

सूत्र - ८०

यहाँ प्रत्यक्ष अवधिज्ञान का वर्णन सम्पूर्ण ।

सूत्र - ८१

भन्ते ! मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप क्या है ? यह ज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है या अमनुष्यों को ?

हे गौतम ! मनः-पर्यवज्ञान मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं । यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या संमूर्छिम को या गर्भव्युत्क्रान्तिक को ? गौतम ! वह गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि गर्भज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान होता है तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है, अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है या अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों को होता है? गौतम ! कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है

यदि कर्मभूमिज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो क्या संख्यात वर्ष की अथवा असंख्यात वर्ष की आयु प्राप्त कर्मभूमिज मनुष्यों को होता है ? गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या पर्याप्त को या अपर्याप्तसंख्यात वर्ष की आयुवाले को होता है ? गौतम ! पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है ।

यदि मनःपर्यवज्ञान पर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्मभूमिज, गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या वह सम्यक्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है ।

–यदि सम्यग्दृष्टि पर्याप्त, संख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है, तो क्या संयत० को होता है, अथवा असंयत० को या संयतासंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है ? गौतम ! संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या प्रमत्त संयत० को होता है या अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क को ? गौतम ! अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है ।

–यदि अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्मभूभिज गर्भज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो क्या ऋद्धिप्राप्त० को होता है अथवा लब्धिरहित अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले को होता है ? गौतम ! ऋद्धिप्राप्त अप्रमाद सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति होती है।

सूत्र - ८२

मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है । ऋजुमति, विपुलमति । यह संक्षेप से चार प्रकार से है । द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से ।

द्रव्य से–ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों को जानता व देखता है, और विपुलमति उन्हीं स्कन्धों को कुछ अधिक विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता व देखता है ।

क्षेत्र से–ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र को तथा उत्कर्ष से नीचे, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन-अधस्तन क्षुल्लक प्रतर को और ऊंचे ज्योतिषचक्र के उपरितल को और तिरछे लोक में मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र पर्वत, पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तरद्वीपों में वर्तमान संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगत भावों को जानता व देखता है । और उन्हीं भावों को विपुलमति अढ़ाई अंगुल अधिक विपुल, विशुद्ध और तिमिररहित क्षेत्र को जानता व देखता है ।

काल से–ऋजुमति जघन्य और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत और भविष्यत् काल को जानता व देखता है । उसी काल को विपुलमति उससे कुछ अधिक, विपुल, विशुद्ध, वितिमिर जानता व देखता है

भाव से–ऋजुमति अनन्त भावों को जानता व देखता है, परन्तु सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता

व देखता है । उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक, विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता व देखता है ।

सूत्र - ८३

मनःपर्यवज्ञान मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए प्राणियों के मन द्वारा परिचिन्तित अर्थ को प्रगट करनेवाला है । क्षान्ति, संयम आदि गुण इस ज्ञान की उत्पत्ति के कारण हैं और यह चारित्रसम्पन्न अप्रमत्तसंयत को ही होता है ।

सूत्र - ८४

यह हुआ मनःपर्यवज्ञान का कथन ।

सूत्र - ८५

भगवन् ! केवलज्ञान का स्वरूप क्या है ? गौतम ! केवलज्ञान दो प्रकार का है, भवस्थ-केवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान । भवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का है । यथा–सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान एवं अयोगिभवस्थ केवलज्ञान । गौतम ! सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान भी दो प्रकार का है, प्रथमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान । इसे अन्य दो प्रकार से भी बताया है । चरमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान –अयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का है । उसे सयोगिभवस्थ के समान जान लेना ।

सूत्र - ८६

सिद्ध केवलज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है, अनंतरसिद्ध केवलज्ञान और परंपरसिद्ध केवलज्ञान ।

सूत्र - ८७

अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान १५ प्रकार से वर्णित है । यथा–तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थंकरसिद्ध, अतीर्थंकर सिद्ध, स्वयंबुद्धसिद्ध, प्रत्येकबुद्धसिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंगसिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, स्वलिंग-सिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, गृहिलिंगसिद्ध, एकसिद्ध और अनेकसिद्ध ।

सूत्र - ८८

वह परम्परसिद्ध-केवलज्ञान कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार से है । यथा–अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत् दससमयसिद्ध, संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध । इस प्रकार परम्परसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन है ।

सूत्र - ८९

संक्षेप में वह चार प्रकार का है–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । केवलज्ञानी द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्व लोकालोक क्षेत्र को, काल से भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को और भाव से सर्व द्रव्यों के सर्व भावों-पर्यायों को जानता व देखता है ।

सूत्र - ९०

केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्यों को, उत्पाद आदि परिणामों को तथा भाव-सत्ता को अथवा वर्ण, गन्ध, रस आदि को जानने का कारण है । वह अनन्त, शाश्वत तथा अप्रतिपाति है । ऐसा यह केवलज्ञान एक प्रकार का ही है ।

सूत्र - ९१

केवलज्ञान के द्वारा सब पदार्थों को जानकर उनमें जो पदार्थ वर्णन करने योग्य होते हैं, उन्हें तीर्थंकर देव अपने प्रवचनों में प्रतिपादन करते हैं । वह उनका वचनयोग होता है अर्थात् वह अप्रदान द्रव्यश्रुत है ।

सूत्र - ९२

केवलज्ञान का विषय सम्पूर्ण हुआ और प्रत्यक्ष भी समाप्त हुआ ।

सूत्र - ९३

वह परोक्षज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का । यथा–आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान । जहाँ

आभिनिबोधिक ज्ञान है वहाँ पर श्रुतज्ञान भी होता है । जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान भी होता है । ये दोनों ही अन्योन्य अनुगत हैं ।

जो सन्मुख आए पदार्थों को प्रमाणपूर्वक अभिगत करता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है, किन्तु जो सुना जाता है वह श्रुतज्ञान है । श्रुतज्ञान मतिपूर्वक ही होता है किन्तु मतिज्ञान श्रुतपूर्वक नहीं होता ।

सूत्र - ९४

सामान्य रूप से मति, मतिज्ञान और मति-अज्ञान दोनों प्रकार का है । परन्तु विशेष रूप से वही मति सम्यक्‌दृष्टि का मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि की मति, मति-अज्ञान होता है ।

इसी प्रकार विशेषता रहित श्रुत, श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान उभय रूप हैं । विशेषता प्राप्त वही सम्यक्‌दृष्टि का श्रुत, श्रुतज्ञान और मिथ्यादृष्टि का श्रुत-अज्ञान होता है ।

सूत्र - ९५

भगवन् ! वह आभिनिबोधिक ज्ञान किस प्रकार का है ? दो प्रकार का–श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित । अश्रुतनिश्रित चार प्रकार का है । यथा–

सूत्र - ९६

औत्पत्तिकी–सहसा जिसकी उत्पत्ति हो, वैनयिकी–विनय से उत्पन्न, कर्मजा–अभ्यास से उत्पन्न, पारिणामिकी–उम्र के परिपाक से उत्पन्न । ये चार प्रकार की बुद्धियाँ शास्त्रकारों ने वर्णित की हैं ।

सूत्र - ९७

जिस बुद्धि के द्वारा पहले बिना देखे और बिना सुने ही पदार्थों के विशुद्ध अर्थ को तत्काल ही ग्रहण कर लिया जाता है और जिससे अव्याहत-फल का योग होता है, वह औत्पत्तिकी बुद्धि है ।

सूत्र – ९८-१००

भरत, शिला, कुर्कुट, तिल, बाल, हस्ति, अगड, वनखंड, पायस, अतिम, पत्र, खाडहिल, पंचपियर, प्रणितवृक्ष, क्षुल्लक, पट, काकीडा, कौआ, उच्चारपरिक्षा, हाथी, भांड, गोलक, स्तम्भ, खुड्डग, मार्ग, स्त्री, पति, पुत्र, मधुसिक्थ, मुद्रिका, अंक, सुवर्णमहोर, भिक्षुचेटक, निधान, शिक्षा, अर्थशास्त्र, इच्छामह, लाख-यह सर्व औत्पातिकी बुद्धि के दृष्टान्त हैं । (कथा-विस्तार वृत्तिग्रन्थों से जानना ।)

सूत्र - १०१

विनय से पैदा हुई बुद्धि कार्यभार वहन करने में समर्थ होती है । धर्म, अर्थ, काम का प्रतिपादन करनेवाले सूत्र तथा अर्थ का प्रमाण-सार ग्रहण करनेवाली है तथा वह विनय से उत्पन्न बुद्धि इस लोक और परलोक में फल देनेवाली होती है ।

सूत्र – १०२-१०३

निमित्त, अर्थशास्त्र, लेख, गणित, कूप, अश्व, गर्दभ, लक्षण, ग्रंथि, अगड, रथिक, गणिका, शीताशाटी, नीव्रोदक, बैलों की चोरी, अश्व का मरण, वृक्ष से गिरना । ये वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण हैं ।

सूत्र - १०४

–उपयोग से जिसका सार देखा जाता है, अभ्यास और विचार से जो विस्तृत बनती है और जिससे प्रशंसा प्राप्त होती है, वह कर्मजा बुद्धि है ।

सूत्र - १०५

सुवर्णकार, किसान, जुलाहा, दर्वीकार, मोती, घी, नट, दर्जी, बढ़ई, हलवाई, घट तथा चित्रकार । इन सभी के उदाहरण कर्म से उत्पन्न बुद्धि के हैं ।

सूत्र - १०६

–अनुमान, हेतु और दटान्त से कार्य को सिद्ध करने वाली, आयु के परिपक्व होने से पुष्ट, लोकहितकारी तथा मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है ।

सूत्र – १०७-१०९

अभयकुमार, सेठ, कुमार, देवी, उदितोदय, साधु, नन्दिघोष, धनदत्त, श्रावक, अमात्य, क्षपक, अमात्यपुत्र, चाणक्य, स्थूलभद्र, नासिक का सुन्दरीनन्द, वज्रस्वामी, चरणाहत, आंबला, मणि, सर्प, गेंडा, स्तूपभेदन–यह सब पारिणामिक बुद्धि के दृष्टान्त हैं ।

सूत्र - ११०

यह हुआ अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान ।

सूत्र - १११

श्रुतनिश्रित मतिज्ञान कितने प्रकार का है ? चार प्रकार का–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ।

सूत्र - ११२

–अवग्रह कितने प्रकार का है ? दो प्रकार से है । अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह ।

सूत्र - ११३

–व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का है ? चार प्रकार का है । श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रह, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रह, जिह्वेन्द्रियव्यंजनावग्रह और स्पर्शेन्द्रियव्यंजनावग्रह ।

सूत्र - ११४

–अर्थावग्रह कितने प्रकार का है ? छह प्रकार का–श्रोत्रेन्द्रियअर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रियअर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रियअर्थावग्रह, स्पर्शेन्द्रियअर्थावग्रह और नोइन्द्रियअर्थावग्रह ।

सूत्र - ११५

–अर्थावग्रह के एक अर्थवाले, नाना घोष तथा नाना व्यञ्जन वाले पांच नाम हैं । यथा–अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता और मेधा ।

सूत्र - ११६

ईहा छह प्रकार की, श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, चक्षुइन्द्रिय-ईहा, घ्राणइन्द्रिय-ईहा, जिह्वाइन्द्रिय-ईहा, स्पर्शइन्द्रिय-ईहा और नोइन्द्रिय-ईहा । ईहा के एकार्थक, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पाँच नाम हैं–आभोगनता, मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता तथा विमर्श ।

सूत्र - ११७

–अवाय मतिज्ञान कितने प्रकार का है ? छह प्रकार का, श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, चक्षुरिन्द्रिय-अवाय, घ्राणेन्द्रिय-अवाय, रसनेन्द्रिय-अवाय, स्पर्शेन्द्रिय-अवाय, नोइन्द्रिय-अवाय । अवाय के एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले पाँच नाम हैं– आवर्तनता, प्रत्यावर्तनता, अवाय, बुद्धि, विज्ञान ।

सूत्र – ११८

धारणा छह प्रकार की, श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, चक्षुरिन्द्रिय-धारणा, घ्राणेन्द्रिय-धारणा, रसनेन्द्रिय-धारणा, स्पर्शेन्द्रिय-धारणा, नोइन्द्रिय-धारणा । धारणा के एक अर्थवाले, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पाँच नाम हैं–धारणा, साधारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा और कोष्ठ ।

सूत्र - ११९

अवग्रह ज्ञान का काल एक समय मात्र का है । ईहा का अन्तर्मुहूर्त्त, अवाय भी अन्तर्मुहूर्त्त तथा धारणा का काल संख्यात अथवा असंख्यात काल है ।

सूत्र - १२०

–चार प्रकार का व्यंजनावग्रह, छह प्रकार का अर्थावग्रह, छह प्रकार की ईहा, छह प्रकार का अवाय और छह प्रकार की धारणा, इस प्रकार अट्ठाईसविध मतिज्ञान के व्यंजन अवग्रह की प्रतिबोधक और मल्लक के उदाहरण से प्ररूपणा करूँगा ।

कोई व्यक्ति किसी गुप्त पुरुष को–''हे अमुक ! हे अमुक !'' इस प्रकार कह कर जगाए । ''भगवन् ! क्या ऐसा संबोधन करने पर उस पुरुष के कानों में एक समय में प्रवेश किए हुए पुद्‌गल ग्रहण करने में आते हैं या दो समय में अथवा दस समयों में, संख्यात समयों में या असंख्यात समयों में प्रविष्ट पुद्‌गल ग्रहण करने में आते हैं ?'' ''एक समय में प्रविष्ट हुए पुद्‌गल ग्रहण करने में नहीं आते, यावत् न ही संख्यात समय में, अपितु असंख्यात समयों में प्रविष्ट हुए शब्द पुद्‌गल ग्रहण करने में आते हैं ।'' इस तरह यह प्रतिबोधक के दृष्टान्त से व्यंजन अवग्रह का स्वरूप वर्णित किया गया ।

'मल्लक के दृष्टान्त से व्यंजनावग्रह का स्वरूप किस प्रकार है ?' जिस प्रकार कोई व्यक्ति आपाकशीर्ष लेकर उसमें पानी की एक बूँद डाले, उसके नष्ट हो जाने पर दूसरी, फिर तीसरी, इसी प्रकार कई बूँदें नष्ट हो जाने पर भी निरन्तर डालता रहे तो पानी की कोई बूँद ऐसी होगी जो उस प्याले को गीला करेगी । तत्पश्चात् कोई बूँद उसमें ठहरेगी और किसी बूँद से प्याला भर जाएगा और भरने पर किसी बूँद से पानी बाहर गिरने लगेगा । इसी प्रकार वह व्यंजन अनन्त पुद्‌गलों से क्रमशः पूरित होता है, तब वह पुरुष हुंकार करता है, किन्तु यह नहीं जानता कि यह किस व्यक्ति का शब्द है ? तत्पश्चात् ईहा में प्रवेश करता है तब जानता है कि यह अमुक व्यक्ति का शब्द है तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब शब्द का ज्ञान होता है । इसके बाद धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यातकाल पर्यंत धारण किये रहता है ।

किसी पुरुष ने अव्यक्त शब्द को सुनकर 'यह कोई शब्द है' इस प्रकार ग्रहण किया किन्तु वह यह नहीं जानता कि 'यह शब्द किसका है ?' तब वह ईहा में प्रवेश करता है, फिर जानता है कि 'यह अमुक शब्द है ।' फिर अवाय में प्रवेश करता है । तत्पश्चात् उसे उपगत हो जाता है और फिर धारणा में प्रवेश करता है, और उसे संख्यातकाल और असंख्यातकाल पर्यन्त धारण किये रहता है ।

कोई व्यक्ति अस्पष्ट रूप को देखे, उसने यह कोई 'रूप है' इस प्रकार ग्रहण किया, परन्तु यह नहीं जान पाया कि 'किसका रूप है ?' तब वह ईहा में प्रविष्ट होता है तथा छानबीन करके यह 'अमुक रूप है' इस प्रकार जानता है । तत्पश्चात् अवाय में प्रविष्ट होकर उपगत हो जाता है, फिर धारणा में प्रवेश करके उसे संख्यात काल अथवा असंख्यात तक धारण कर रखता है ।

कोई पुरुष अव्यक्त गंध को सूँघता है, उसने 'कोई गंध है' इस प्रकार ग्रहण किया, किन्तु वह यह नहीं जानता कि 'किस प्रकार की गंध है ?' तदनन्तर ईहा में प्रवेश करके जानता है कि 'यह अमुक गंध है ।' फिर अवाय में प्रवेश करके गंध से उपगत हो जाता है । तत्पश्चात् धारणा करके उसे संख्यात व असंख्यात काल तक धारण किये रहता है । ....कोई व्यक्ति किसी रस का आस्वादन करता है । रस को ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जानता कि 'कौन सा रस है?' तब ईहा में प्रवेश करके वह जान लेता है कि 'यह अमुक प्रकार का रस है ।' तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है । तब उसे उपगत हो जाता है । तदनन्तर धारणा करके संख्यात एवं असंख्यात काल तक धारण किये रहता है ।

–कोई पुरुष अव्यक्त स्पर्श को स्पर्श करता है, 'कोई स्पर्श है' इस प्रकार ग्रहण किया किन्तु 'यह नहीं जाना कि स्पर्श किस प्रकार का है ?' तब ईहा में प्रवेश करता है और जानता है कि 'अमुक का स्पर्श है ।' तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करके वह उपगत होता है । फिर धारणा में प्रवेश करने के बाद संख्यात अथवा असंख्यात काल पर्यन्त धारण किये रहता है ।

–कोई पुरुष अव्यक्त स्वप्न को देखे, 'स्वप्न है' इस प्रकार ग्रहण किया, परन्तु यह नहीं जानता कि 'कैसा

स्वप्न है?' तब ईहा में प्रवेश करके जानता है कि 'यह अमुक स्वप्न है ।' उसके बाद अवाय में प्रवेश करके उपगत होता है । तत्पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करके संख्यात या असंख्यात काल तक धारण करता है । इस प्रकार मल्लक के दृष्टांत से अवग्रह का स्वरूप हुआ ।

सूत्र - १२१

–वह मतिज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का है । –द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । मतिज्ञानी द्रव्य से सामान्यतः सर्व द्रव्यों को जानता है, किन्तु देखता नहीं । क्षेत्र से सामान्यतः सर्व क्षेत्र को जानता है, किन्तु देखता नहीं । काल से सामान्यतः तीनों कालों को जानता है, किन्तु देखता नहीं । भाव से सामान्यतः सब भावों को जानता है, पर देखता नहीं ।

सूत्र - १२२

मतिज्ञान के संक्षेप में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा क्रम से ये चार विकल्प हैं ।

सूत्र - १२३

अर्थों के अवग्रहण को अवग्रह, अर्थों के पर्यालोचन को ईहा, अर्थों के निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय और उपयोग की अविच्युति, वासना तथा स्मृति को धारणा कहते हैं ।

सूत्र - १२४

–अवग्रह ज्ञान का काल एक समय, ईहा और अवायज्ञान का समय अर्द्धमुहूर्त्त तथा धारणा का काल-परिमाण संख्यात व असंख्यात काल पर्यन्त समझना ।

सूत्र - १२५

–श्रोत्रेन्द्रिय के साथ स्पष्ट होने पर ही शब्द सुना जाता है, किन्तु नेत्र रूप को बिना स्पृष्ट हुए ही देखते हैं । चक्षुरिन्द्रिय अप्राप्यकारी ही हैं । घ्राण, रसन और स्पर्शन इन्द्रियों से बद्धस्पृष्ट हुए-पुद्‌गल जाने जाते हैं ।

सूत्र - १२६

–वक्ता द्वारा छोड़े गए जिन भाषारूप पुद्‌गल-समूह को समश्रेणि में स्थित श्रोता सुनता है, उन्हें नियम से अन्य शब्द द्रव्यों से मिश्रित ही सुनता है । विश्रेणि में स्थित श्रोता शब्द को नियम से पराघात होने पर ही सुनता है

सूत्र - १२७

ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति और प्रज्ञा, ये सब आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायवाची नाम हैं

सूत्र - १२८

यह आभिनिबोधिक ज्ञान-परोक्ष का विवरण पूर्ण हुआ । मतिज्ञान भी सम्पूर्ण हुआ ।

सूत्र - १२९

–श्रुतज्ञान-परोक्ष कितने प्रकार का है ? चौदह प्रकार का, अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत, संज्ञिश्रुत, असंज्ञिश्रुत, सम्यक्‌श्रुत, मिथ्याश्रुत, सादिक्‌श्रुत, अनादिकश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, अपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अगमिकश्रुत, अङ्गप्रविष्टश्रुत और अनङ्ग-प्रविष्टश्रुत ।

सूत्र - १३०

–अक्षरश्रुत कितने प्रकार का है ? तीन प्रकार से है–संज्ञा-अक्षर, व्यञ्जन-अक्षर और लब्धि-अक्षर । अक्षर की आकृति आदि, जो विभिन्न लिपियों में लिखे जाते हैं, वे संज्ञा-अक्षर हैं । उच्चारण किए जानेवाले अक्षर व्यंजन-अक्षर हैं । अक्षर-लब्धि वाले जीव को लब्धि-अक्षर उत्पन्न होता है अर्थात् भावरूप श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । जैसे–श्रोत्रेन्द्रियलब्धिअक्षर, यावत् स्पर्शनेन्द्रियलब्धिअक्षर और नोइन्द्रियलब्धि-अक्षर । इस प्रकार अक्षरश्रुत का वर्णन है

सूत्र - १३१

–अनक्षरश्रुत कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार का, ऊपर श्वास लेना, नीचे श्वास लेना, थूकना, खाँसना, छींकना, निःसिंघना तथा अन्य अनुस्वार युक्त चेष्टा करना आदि ।

सूत्र - १३२

यह सभी अनक्षरश्रुत हैं ।

सूत्र - १३३

–संज्ञिश्रुत कितने प्रकार का है ? तीन प्रकार का, कालिका-उपदेश से, हेतु-उपदेश से और दृष्टिवाद-उपदेश से । कालिक-उपदेश से जिसे ईहा, अपोह, निश्चय, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्श । उक्त प्रकार से जिस प्राणी की विचारधारा हो, वह संज्ञी है । जिसके ईहा, अपाय, मार्गणा, गवेषणा, चिंता और विमर्श नहीं हों, वह असंज्ञी है ।

संज्ञी जीव का श्रुत संज्ञी-श्रुत और असंज्ञी का असंज्ञी-श्रुत कहलाता है । यह कालिक-उपदेश से संज्ञी एवं असंज्ञीश्रुत हैं । हेतु-उपदेश से जिस जीव की अव्यक्त या व्यक्त विज्ञान के द्वारा आलोचना पूर्वक क्रिया करने की शक्ति हे, वह संज्ञी है । जिसकी विचारपूर्वक क्रिया करने में प्रवृत्ति नहीं है, वह असंज्ञी है ।

दृष्टिवाद-उपदेश की अपेक्षा से संज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से संज्ञी है । असंज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से 'असंज्ञी' है यह दृष्टिवादोपदेश से संज्ञी है । इस प्रकार संज्ञि और असंज्ञिश्रुत हुआ ।

सूत्र - १३४

–सम्यक्श्रुत किसे कहते हैं ? सम्यक्श्रुत उत्पन्न ज्ञान और दर्शन को धारण करनेवाले, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा आदर-सन्मानपूर्वक देखे गये तथा यथावस्थित उत्कीर्तित, भावयुक्त नमस्कृत, अतीत, वर्तमान और अनागत को जाननेवाले, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अर्हंत-तीर्थंकर भगवंतों द्वारा प्रणीत-अर्थ से कथन किया हुआ-जो यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक है, जैसे– आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृत्‌दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद, यह सम्यक्श्रुत है ।

यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक चौदह पूर्वधारी का सम्यक्श्रुत ही होता है । सम्पूर्ण दस पूर्वधारी का भी सम्यक् श्रुत ही होता है । उससे कम अर्थात् कुछ कम दस पूर्व और नव आदि पूर्व का ज्ञान होने पर विकल्प है, अर्थात् सम्यक्श्रुत हो और न भी हो। इस प्रकार यह सम्यक्श्रुत का वर्णन पूरा हुआ ।

सूत्र - १३५

–मिथ्याश्रुत का स्वरूप क्या है ? मिथ्याश्रुत अज्ञानी एवं मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छंद और विपरीत बुद्धि द्वारा कल्पित किये हुए ग्रन्थ हैं, यथा–भारत, रामायण, भीमासुरोक्त, कौटिल्य, शकटभद्रिका, घोटकमुख, कार्पासिक, नाग-सूक्ष्म, कनकसप्तति, वैशेषिक, बुद्धवचन, त्रैराशिक, कापिलीय, लोकायत, षष्टितंत्र, माठर, पुराण, व्याकरण, भागवत, पातञ्जलि, पुष्यदैवत, लेख, गणित, शकुनिरुत, नाटक अथवा बहत्तर कलाएँ और चार वेद अंगोपाङ्ग सहित । ये सभी मिथ्यादृष्टि के लिए मिथ्यारूप में ग्रहण किये हुए मिथ्याश्रुत हैं । यही ग्रन्थ सम्यक्‌दृष्टि द्वारा सम्यक्‌रूप में ग्रहण किए हुए सम्यक्-श्रुत हैं । अथवा मिथ्यादृष्टि के लिए भी यही ग्रन्थ-शास्त्र सम्यक्श्रुत हैं, क्योंकि ये उनके सम्यक्त्व में हेतु हो सकते हैं, कईं मिथ्यादृष्टि इन ग्रन्थों से प्रेरित होकर अपने मिथ्यात्व को त्याग देते हैं । यह मिथ्याश्रुत का स्वरूप है ।

सूत्र - १३६

–सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसितश्रुत का क्या स्वरूप है ? यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं, और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से आदि अन्त रहित है । यह श्रुतज्ञान संक्षेप में चार प्रकार से वर्णित किया गया है, जैसे–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से, एक

पुरुष की अपेक्षा से सादिसपर्यवसित है । बहुत से पुरुषों की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है । क्षेत्र से पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों की अपेक्षा सादि-सान्त है । पाँच महाविदेह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त है । काल से सम्यक्श्रुत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की अपेक्षा सादि-सान्त है । अवस्थित काल की अपेक्षा अनादि-अनन्त है ।

भाव से सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिन-तीर्थंकरों द्वारा जो भाव-पदार्थ जिस समय सामान्यरूप या विशेष रूप से कथन किये जाते हैं, हेतु-दृष्टान्त के उपदर्शन से जो स्पष्टतर किये जाते हैं और उपनय तथा निगमन से जो स्थापित किये जाते हैं, तब उन भावों की अपेक्षा से सादि-सान्त है । क्षयोपशम भाव की अपेक्षा से सम्यक्-श्रुत अनादि-अनन्त है । अथवा भवसिद्धिक प्राणी का श्रुत सादि-सान्त है, अभवसिद्धिक का मिथ्या-श्रुत अनादि और अनन्त है

सम्पूर्ण आकाश-प्रदेशों का समस्त आकाश प्रदेशों के साथ अनन्त बार गुणाकार करने से पर्याय अक्षर निष्पन्न होता है। सभी जीवों के अक्षर-श्रुतज्ञान का अनन्तवाँ भाग सदैव उद्घाटित रहता है । यदि वह भी आवरण को प्राप्त हो जाए तो उससे जीवात्मा अजीवभाव को प्राप्त हो जाए । बादलों का अत्यधिक पटल ऊपर आ जाने पर भी चन्द्र और सूर्य की कुछ न कुछ प्रभा तो रहती ही है ।

इस प्रकार सादि-सान्त और अनादि-अनन्त श्रुत का वर्णन है ।

सूत्र - १३७

–गमिक-श्रुत क्या है ? आदि, मध्य या अवसान में कुछ शब्द-भेद के साथ उसी सूत्र को बार-बार कहना गमिक-श्रुत है । दृष्टिवाद गमिक-श्रुत है । गमिक से भिन्न आचाराङ्ग आदि कालिकश्रुत अगमिक-श्रुत हैं । अथवा श्रुत संक्षेप में दो प्रकार का है–अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य । अङ्गबाह्य दो प्रकार का है–आवश्यक, आवश्यक से भिन्न। आवश्यक-श्रुत छह प्रकार का है–सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान

–आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का, कालिक–जिस श्रुत का रात्रि व दिन के प्रथम और अन्तिम प्रहर में स्वाध्याय किया जाता है । उत्कालिक–जो कालिक से भिन्न काल में भी पढ़ा जाता है ।

उत्कालिक श्रुत अनेक प्रकार का है, जैसे–दशवैकालिक, कल्पाकल्प, चुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, नन्दी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रविद्या, सूर्यप्रज्ञप्ति, पौरुषीमंडल, मण्डलप्रदेश, विद्याचरण-विनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरणविभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, संलेखनाश्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुर-प्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान आदि । यह उत्कालिक श्रुत का वर्णन हुआ ।

कालिक-श्रुत कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार का, उत्तराध्ययन, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, ऋषिभाषित, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, क्षुद्रिकाविमानविभक्ति, महल्लिका-विमानप्रविभक्ति, अङ्गचूलिका, वर्ग-चूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलन्धरोपपात, देवेन्द्रोपपात, उत्थानश्रुत, समुत्थानश्रुत, नागपरिज्ञापनिका, निरयावलिका, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा आदि ।

८४००० प्रकीर्णक अर्हत् भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी आदि तीर्थंकर के हैं तथा संख्यात सहस्र प्रकीर्णक मध्यम तीर्थंकरों के हैं । १४००० प्रकीर्णक भगवान् महावीर स्वामी के हैं ।

इनके अतिरिक्त जिस तीर्थंकर के जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनविकी, कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धि से युक्त हैं, उनके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं । प्रत्येकबुद्ध भी उतने ही होते हैं । यह कालिकाश्रुत है । इस प्रकार आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत और अनङ्ग-प्रविष्ट श्रुत का स्वरूप भी सम्पूर्ण हुआ ।

सूत्र - १३८

–अङ्गप्रविष्ट कितने प्रकार का है ? बारह प्रकार का–आचार, सूत्रकृत्, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति,

ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृत्‌दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद ।

सूत्र - १३९

–आचार नामक अंगसूत्र का क्या स्वरूप है ? उसमें बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह से रहित श्रमण निर्ग्रन्थों का आचार, गोचर-भिक्षा के ग्रहण करने की विधि, विनय, विनय का फल, ग्रहण और आसेवन रूप शिक्षा, बोलने योग्य एवं त्याज्य भाषा, चरण-व्रतादि, करणपिण्डविशुद्धि आदि, संयम का निर्वाह और अभिग्रह धारण करके विचरण करना इत्यादि विषयों का वर्णन है। वह आचार संक्षेप में पाँच प्रकार का है, जैसे–ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार ।

आचारश्रुत में सूत्र और अर्थ से परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ-छंद, संख्यात श्लोक, संख्यात नियुक्तियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ वर्णित हैं । आचार अर्थ से प्रथम अंग है । उसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं । पच्यासी उद्देशनकाल हैं, पच्यासी समुद्देशनकाल हैं । पदपरिणाम से अठारह हजार पद हैं। संख्यात अक्षर हैं । अनन्त गम और अनन्त पर्यायें हैं । परिमित त्रस और अनन्त स्थावर जीवों का वर्णन है । शाश्वत-धर्मास्तिकाय आदि, कृत-प्रयोजन-घटादि, विश्रसा-स्वाभाविक –सध्या, बादलों आदि का रंग, ये सभी आचार सूत्र में स्वरूप से वर्णित हैं । निर्युक्ति, संग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि अनेक प्रकार से जिन-प्रज्ञप्त भाव-पदार्थ, सामान्य रूप से कहे गए हैं । नामादि से प्रज्ञप्त हैं । विस्तार से कथन किये गये हैं । उपमान आदि से पृष्ट किये गए हैं । आचार को ग्रहण करनेवाला, उसके अनुसार क्रिया करनेवाला, आचार की साक्षात्‌ मूर्ति बन जाता है। वह भावों का ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है ।

इस प्रकार आचारांग सूत्र में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है । यह आचार सूत्र का स्वरूप है ।

सूत्र - १४०

–सूत्रकृत में किस विषय का वर्णन है ? सूत्रकृत में षड्‌द्रव्यात्मक लोक, केवल आकाश द्रव्यमल अलोक, लोकालोक दोनों सूचित किये जाते हैं । इसी प्रकार जीव, अजीव और जीवाजीव की सूचना है । स्वमत, परमत और स्व-परमत की है । सूत्रकृत में १८० कियावादियों के, ८४ अक्रियावादियों के, ६७ अज्ञानवादियों और ३२ विनयवादियों के, इस प्रकार ३६३ पाखंडियों का निराकरण करके स्वसिद्धांत की स्थापना की जाती है ।

सूत्रकृत में परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह अङ्ग अर्थ की दृष्टि से दूसरा है । इसमें दो श्रुतस्कंध और तेईस अध्ययन हैं । तैंतीस उद्देशनकाल और तैंतीस समुद्देशनकाल हैं । पद-परिणाम ३६००० हैं ।

इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत, प्रयत्नजन्य, या प्रकृतिजन्य, निबद्ध एवं हेतु आदि द्वारा सिद्ध किए गए जिन-प्रणीत भाव कहे जाते हैं तथा इनका प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । सूत्रकृत का अध्ययन करनेवाला तद्रूप अर्थात्‌ सूत्रगत विषयों में तल्लीन होने से तदाकार आत्मा, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है ।

इस प्रकार से इस सूत्र में चरण-करण की प्ररूपणा कही जाती है

सूत्र - १४१

–भगवन्‌ ! स्थानाङ्गश्रुत क्या है ? स्थान में अथवा स्थान के द्वारा जीव, अजीव और जीवाजीव की स्थापना की जाती है । स्वसमय, परसमय एवं उभय पक्षों की स्थापना की जाती है । लोक, अलोक और लोकालोक की स्थापना की जाती है । स्थान में या स्थान के द्वारा टङ्क पर्वत कूट, पर्वत, शिखर वाले पर्वत, पर्वत के ऊपर हस्तिकुम्भ की आकृति सदृश्य कुब्ज, कुण्ड, ह्रद, नदियों का कथन है । स्थान में एक से लेकर दस तक वृद्धि करते हुए भावों की प्ररूपणा है । स्थान सूत्र में परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ-छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । वह तृतीय अङ्ग है ।

इसमें एक श्रुतस्कंध और दस अध्ययन हैं तथा इक्कीस उद्देशनकाल और इक्कीस समुद्देशनकाल हैं । पदों की संख्या ७२००० है । संख्यात अक्षर तथा अनन्त गम हैं । अनन्त पर्याय, परिमित-त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनकथित भाव कहे जाते हैं । उनका प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । स्थानसूत्र का अध्ययन करनेवाला तदात्मरूप, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार उक्त अङ्ग में चरण-करणानुयोग की प्ररूपणा की गई है ।

सूत्र - १४२

–समवायश्रुत का विषय क्या है ? समवाय सूत्र में यथावस्थित रूप से जीवों, अजीवों और जीवाजीवों का आश्रयण किया गया है । स्वदर्शन, परदर्शन और स्वपरदर्शन का आश्रयण किया गया है । लोक अलोक और लोकालोक आश्रयण किये जाते हैं । समवाय में एक से लेकर सौ स्थान तक भावों की प्ररूपणा है और द्वादशाङ्ग गणिपिटक का संक्षेप में परिचय-आश्रयण है । समवाय में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह चौथा अङ्ग है ।

एक श्रुतस्कंध, एक अध्ययन, एक उद्देशनकाल और एक समुद्देशनकाल है । इसका पद-परिमाण १४४००० है । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस, अनन्त स्थावर तथा शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन-प्ररूपित भाव, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किये गए हैं । समवाय का अध्ययन करनेवाला तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार समवाय में चरण-करण की प्ररूपणा है ।

सूत्र - १४३

व्याख्याप्रज्ञप्ति में क्या वर्णन है? व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीवों की, अजीवों की तथा जीवाजीवों की व्याख्या है। स्वसमय, परसमय और स्व-पर-उभय सिद्धान्तों की तथा लोक, अलोक और लोकालोक के स्वरूप का व्याख्यान है। परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ-श्लोक विशेष, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह पाँचवाँ अंग है । एक श्रुतस्कंध, कुछ अधिक एक सौ अध्ययन हैं । १०००० उद्देश, १०००० समुद्देश, ३६००० प्रश्नोत्तर और २२८००० पद परिमाण है । संख्यात अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्याय हैं । परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत्-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन तथा उपदर्शन किया गया है । व्याख्याप्रज्ञप्ति का अध्येता तदात्मरूप एवं ज्ञाता-विज्ञाता बन जाता है । इस प्रकार इसमें चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

सूत्र - १४४

भगवन् ! ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में क्या वर्णन है ? ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञातों के नगरों, उद्यानों, चैत्यों, वनखण्डों व भगवान् के समवसरणों का तथा राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक और परलोक संबंधी ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, दीक्षा, पर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधान-तप, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोप-गमन, देवलोकगमन, पुनः उत्तमकुल में जन्म, पुनः समक्यक्त्व की प्राप्ति, तत्पश्चात् अन्तक्रिया कर मोक्ष की उपलब्धि इत्यादि विषयों का वर्णन है ।

धर्मकथा के दस वर्ग हैं और एक-एक धर्मकथा में पाँच-पाँच सौ आख्यायिकाएँ हैं । एक-एक आख्यायिका में पाँच-पाँच सौ उपाख्यायिकाएँ और एक-एक उपाख्यायिका में पाँच-पाँच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाएँ हैं । इस प्रकार पूर्वापर कुल साढ़े तीन करोड़ कथानक हैं । परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । छठा अंग है ।

इसमें दो श्रुतस्कन्ध, १९ अध्ययन, १९ उद्देशनकाल, १९ समुद्देशन-काल तथा संख्यात सहस्रपद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचि

जिन-प्रतिपादित भाव, कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपणा, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किए गए हैं । प्रस्तुत अङ्ग का पाठक तदात्मरूप, ज्ञाता-विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथा में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा है ।

सूत्र - १४५

उपासकदशा नामक अंग किस प्रकार है ? उपासकदशा में श्रमणोपासकों के नगर, उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक और परलोक की ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, दीक्षा, संयम की पर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, शीलव्रत-गुणव्रत, विरमणव्रत-प्रत्याख्यान, पौषधोपवास का धारण करना, प्रतिमाओं का धारण करना, उपसर्ग, संलेखना, अनशन, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, पुनः सुकुल में उत्पत्ति, पुनः बोधि-सम्यक्त्व का लाभ और अन्तक्रिया इत्यादि विषयों का वर्णन है । परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ (छन्द विशेष) संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह सातवाँ अंग है ।

उसमें एक श्रुतस्कंध, दस अध्ययन, दस उद्देशनकाल और दस समुद्देशनकाल हैं । पद-परिमाण से संख्यात-सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रतिपादित भावों का सामान्य और विशेष रूप से कथन, प्ररूपण, प्रदर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया है । इसका सम्यक्रूपेण अध्ययन करने वाला तद्रूप-आत्म ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है । उपासकदशांग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

सूत्र - १४६

–अन्तकृद्दशा-श्रुत किस प्रकार का है ? अन्तकृद्दशा में अन्तकृत् महापुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इस लोक और परलोक की ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या और दीक्षापर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अन्तक्रिया-शैलेशी अवस्था आदि विषयों का वर्णन है । परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह आठवाँ अंग है ।

इसमें एक श्रुतस्कंध, आठ उद्देशनकाल, आठ समुद्देशनकाल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय तथा परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं। शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रज्ञप्ति भाव हैं तथा प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन हैं । इस सूत्र का अध्ययन करनेवाला तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस तरह प्रस्तुत अङ्ग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है।

सूत्र - १४७

भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक-दशा सूत्र में क्या वर्णन है ? अनुत्तरोपपातिक दशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होनेवाले आत्माओं के नगर, उद्यान, व्यन्तरायन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऋद्धिविशेष, भोगों का परित्याग, दीक्षा, संयमपर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, प्रतिमाग्रहण, उपसर्ग, अंतिम संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपो-पगमन तथा अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति । पुनः वहाँ से चवकर सुकुल की प्राप्ति, फिर बोधिलाभ और अन्तक्रिया इत्यादि का वर्णन है । परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं ।

यह नवमा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध, तीन वर्ग, तीन उद्देशनकाल और तीन समुद्देशनकाल हैं । पदाग्र परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावरों का वर्णन है । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रणीत भाव हैं । प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से सुस्पष्ट किए गए हैं । इसका सम्यक् रूपेण अध्ययन करनेवाला तद्रूप आत्मा, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो

जाता है । इस प्रकार चरण-करण की प्ररूपणा उक्त अंग में की गई है ।

सूत्र - १४८

प्रश्नव्याकरण किस प्रकार है ? प्रश्नव्याकरण सूत्र में १०८ प्रश्न हैं, १०८ अप्रश्न हैं, १०८ प्रश्नाप्रश्न हैं । अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न तथा आदर्शप्र । इनके अतिरिक्त अन्य भी विचित्र विद्यातिशय कथन हैं । नागकुमारों और सुपर्णकुमारों के साथ हुए मुनियों के दिव्य संवाद भी हैं । परिमित वाचनाएँ हैं । संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ और संख्यात संग्रहणियाँ तथा प्रतिपत्तियाँ हैं ।

यह दसवां अंग है । इनमें एक श्रुतस्कंध, ४५ अध्ययन, ४५ उद्देशनकाल और ४५ समुद्देशनकाल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थगम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित, जिन प्रतिपादित भाव हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन तथा उपदर्शन द्वारा स्पष्ट किए गए हैं । प्रश्नव्याकरण का पाठक तदात्मकरूप एवं ज्ञाता, विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार उक्त अंग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

सूत्र - १४९

भगवन् ! विपाकश्रुत किस प्रकार का है ? विपाकश्रुत में शुभाशुभ कर्मों के फल-विपाक हैं । उस विपाकश्रुत में दस दुःखविपाक और दस सुखविपाक अध्ययन हैं । दुःखविपाक में दुःखरूप फल भोगनेवालों के नगर, उद्यान, वनखंड चैत्य, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इह-परलौकिक ऋद्धि, नरकगमन, भवभ्रमण, दुःखपरम्परा, दुष्कुल में जन्म तथा दुर्लभ-बोधिता की प्ररूपणा है । सुखविपाक श्रुत में सुखरूप फल भोगनेवाले के नगर, उद्यान, वनखण्ड, व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऋद्धि विशेष भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षापर्याय, श्रुत ग्रहण, उपधानतप, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, सुखों की परम्परा, पुनः बोधिलाभ, अन्तक्रिया इत्यादि विषयों हैं । इस में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोग-द्वार, संख्यात वेढ, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं ।

वह ग्यारहवाँ अंग है । इसके दो श्रुतस्कन्ध, बीस अध्ययन, बीस उद्देशनकाल और बीस समुद्देशनकाल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्ररूपित भाव हेतु आदि से निर्णीत, प्ररूपित, निदर्शित और उपदर्शित किए गए हैं । विपाकश्रुत का अध्ययन करनेवाला एवंभूत आत्मा, ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है । इस तरह से चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

सूत्र - १५०

दृष्टिवाद क्या है ? दृष्टिवाद-सब नयदृष्टियों का कथन करने वाले श्रुत में समस्त भावों की प्ररूपणा है । संक्षेप में पाँच प्रकार का है । परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका ।

परिकर्म सात प्रकार का है, सिद्ध-श्रेणिकापरिकर्म, मनुष्य-श्रेणिकापरिकर्म, पुष्ट-श्रेणिकापरिकर्म, अवगाढ-श्रेणिका-परिकर्म, उपसम्पादन-श्रेणिकापरिकर्म, विप्रजहत् श्रेणिकापरिकर्म और च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्म ।

सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है । यथा-मातृकापद, एकार्थपद, अर्थपद, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त्त, सिद्धावर्त ।

मनुष्यश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है, जैसे-मातृकापद, एकार्थक पद, अर्थपद, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एक गुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त्त और मनुष्यावर्त ।

पृष्टश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है, पृथगाकाशपद, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त्त और अवगाढावर्त्त।

उपसम्पादन श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है । पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसार प्रतिग्रह, नन्दावर्त्त और उपसम्पादनावर्त ।

विप्रजहत्श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है । पृथकाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नंदावर्त्त, विप्रजहदावर्त्त । च्युताच्युत श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसार-प्रतिग्रह, नन्दावर्त्त और च्युताच्युतावर्त । इन ग्यारह भेदों में से प्रारम्भ के छह परिकर्म चार नयों के आश्रित हैं और अंतिम सात में त्रैराशिक मत का दिग्दर्शन कराया गया है ।

सूत्र रूप दृष्टिवाद बाईस प्रकार से है । ऋजुसूत्र, परिणतापरिणत, बहुभंगिक, विजयचरित, अनन्तर, परम्पर, आसान, संयूथ, सम्भिन्न, यथावाद, स्वस्तिकावर्त, नन्दावर्त, बहुल, पृष्टापृष्ट, व्यावर्त्त, एवंभूत, द्विकावर्त्त, वर्तमानपद, समभिरूढ़, सर्वतोभद्र, प्रशिष्य, दुष्प्रतिग्रह । ये बाईस सूत्र छिन्नच्छेदनयवाले, स्वसमय सूत्र परिपाटी के आश्रित हैं । यह ही बाईस सूत्र आजीविक गोशालक के दर्शन की दृष्टि से अच्छिन्नच्छेद नय वाले हैं । इसी प्रकार से ये ही सूत्र त्रैराशिक सूत्र परिपाटी से तीन नय वाले हैं, स्वसमयसिद्धान्त की दृष्टि से चतुष्क नय वाले हैं । इस प्रकार पूर्वापर सर्व मिलकर ८८ सूत्र हो जाते हैं । यह कथन तीर्थंकर और गणधरों ने किया है ।

पूर्वगत-दृष्टिवाद चौदह प्रकार का है, उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवादपूर्व, अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, विद्यानुवादप्रवादपूर्व, अबध्य-पूर्व, प्राणायुपूर्व, क्रियाविशाल-पूर्व, और लोकबिन्दुसारपूर्व ।

उत्पादपूर्व में दस वस्तु और चार चूलिका वस्तु, अग्रायणीय में चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु, वीर्यप्रवाद में आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु, अस्तिनास्तिप्रवाद में अठारह वस्तु और दस चूलिका वस्तु, ज्ञानप्रवाद में बारह वस्तु, सत्यप्रवाद में दो वस्तु हैं, आत्मप्रवाद में सोलह वस्तु, कर्मप्रवाद में तीस वस्तु, प्रत्याख्यान में बीस वस्तु, विद्यानुवाद में पन्द्रह वस्तु, अबध्य में बारह वस्तु, प्राणायु में तेरह वस्तु, क्रियाविशाल में तीस वस्तु और लोकबिन्दुसारपूर्व में पच्चीस वस्तु है ।

सूत्र – १५१-१५३

पहले में १०, दूसरे में १४, तीसरे में ८, चौथे में १८, पाँचवें में १२, छठे में २, सातवें में १६, आठवें में ३०, नवमें में १५, ग्यारहवें में १२, बारहवें में १३, तेरहवें में ३० और चौदहवें में २५ वस्तु है । आदि के चार पूर्वों में क्रम से–प्रथम में ४, द्वितीय में १२, तृतीय में ८ और चतुर्थ पूर्व में १० चूलिकाएँ हैं । शेष पूर्वों में चूलिकाएँ नहीं हैं ।

सूत्र - १५४

भगवन् ! अनुयोग कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है, मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग ।

मूलप्रथमानुयोग में अरिहन्त भगवंतों के पूर्व भवों, देवलोक में जाना, आयुष्य, च्यवनकर तीर्थंकर रूप में जन्म, जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक, राज्यलक्ष्मी, प्रव्रज्या, घोर तपश्चर्या, केवलज्ञान की उत्पत्ति, तीर्थ की प्रवृत्ति, शिष्य-समुदाय, गण, गणधर, आर्यिकाएँ, प्रवर्तिनीएँ, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी एवं सम्यक्श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तरगति और उत्तर-वैक्रियधारी मुनि यावन्मात्र मुनि सिद्ध हुए, मोक्ष-मार्ग जैसे दिखाया, जितने समय तक पादपोपगमन संथारा किया, जिस स्थान पर जितने भक्तों का छेदन किया, अज्ञान अंधकार के प्रवाह से मुक्त होकर जो महामुनि मोक्ष के प्रधान सुख को प्राप्त हुए इत्यादि।

इनके अतिरिक्त अन्य भाव भी मूल प्रथमानुयोग में प्रतिपादित किए गए हैं ।

गण्डिकानुयोग में कुलकरगण्डिका, तीर्थंकरगण्डिका, चक्रवर्त्तीगण्डिका, दशारगंडिका, बलदेवगंडिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगण्डिका, अवसर्पिणीगण्डिका, चित्रान्तर-गण्डिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरकगति, इनमें गमन और विविध प्रकार से संसार में पर्यटन इत्यादि गण्डिकाएँ हैं ।

चूलिका क्या है ? आदि के चार पूर्वों में चूलिकाएँ हैं, शेष पूर्वों में चूलिकाएँ नहीं हैं ।

दृष्टिवाद की संख्यात वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेढ, संख्यात प्रतिपत्तियाँ, संख्यात निर्युक्तियाँ और संख्यात संग्रहणियाँ हैं । वह बारहवाँ अंग है । एक श्रुतस्कन्ध है और चौदह पूर्व हैं । संख्यात वस्तु, संख्यात चूलिकावस्तु, संख्यात प्राभृत, संख्यात प्राभृतप्राभृत, संख्यात प्राभृतिकाएँ, संख्यात प्राभृतिकाप्राभृतिकाएँ हैं । संख्यात सहस्रपद हैं । संख्यात अक्षर और अनन्त गम हैं । अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावरों का वर्णन है । शाश्वत, कृत-निबद्ध, निकाचित जिन-प्रणीत भाव कहे गए हैं । प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किए गए हैं । दृष्टिवाद का अध्येता तद्रूप आत्मा और भावों का सम्यक् ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है । इस प्रकार चरण-करण की प्ररूपणा इस अङ्ग में की गई है ।

सूत्र - १५५

इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक में अनन्त जीवादि भाव, अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध और अनन्त असिद्ध कथन हैं।

सूत्र - १५६

भाव और अभाव, हेतु और अहेतु, कारण-अकारण, जीव-अजीव, भव्य-अभव्य, सिद्ध-असिद्ध, विषयों का वर्णन है।

सूत्र - १५७

इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की भूतकाल में अनन्त जीवों ने विराधना करके चार गतिरूप संसार कान्तार में भ्रमण किया । इसी प्रकार वर्तमानकाल में परिमित जीव आज्ञा से विराधना करके चार गतिरूप संसार में भ्रमण कर रहे हैं–इसी प्रकार द्वादशाङ्ग गणिपिटक की आगामी काल में अनन्त जीव आज्ञा से विराधना करके चार गतिरूप संसार कान्तार में भ्रमण करेंगे ।

इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की भूतकाल में आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव संसार रूप अटवी को पार कर गए । वर्तमान काल में परिमित जीव संसार को पार करते हैं । इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव चार गति रूप संसार को पार करेंगे ।

यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक न कदाचित् नहीं था अर्थात् सदैवकाल था, न वर्तमान काल में नहीं है अर्थात् वर्तमान में है, न कदाचित् न होगा अर्थात् भविष्य में सदा होगा । भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य में रहेगा । यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत और अक्षय है, अव्यय है । अवस्थित नित्य है । कभी नहीं थे, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं होंगे, ऐसा भी नहीं है । इसी प्रकार यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक–कभी न था, वर्तमान में नहीं है, भविष्य में नहीं होगा, ऐसा नहीं है । भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा

यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है । वह संक्षेप में चार प्रकार का है, द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । श्रुतज्ञानी-उपयोग लगाकर द्रव्य से सब द्रव्यों को जानता और देखता है । क्षेत्र से सब क्षेत्र को जानता और देखता है । काल से सर्व काल को जानता व देखता है । भाव से सब भावों को जानता और देखता है ।

सूत्र – १५८-१६३

अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक और अङ्गप्रविष्ट, ये सात और इनके सप्रतिपक्ष सात मिलकर श्रुतज्ञान के चौदह भेद हो जाते हैं ।

बुद्धि के जिन आठ गुणों से आगम शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रुतज्ञान का लाभ देखा गया है, वे इस प्रकार हैं–विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है । जब शंका होती है तब गुरु को

प्रसन्न करता हुआ पूछता है । गुरु के द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है, सुनकर उसके अर्थ को ग्रहण करता है । अनन्तर पूर्वापर अविरोध से पर्यालोचन करता है, तत्पश्चात् यह ऐसे ही है जैसा गुरुजी फरमाते हैं, यह मानता है । इसके बाद निश्चित अर्थ को हृदय में सम्यक् रूप से धारण करता है । फिर जैसा गुरु ने प्रतिपादन किया था, उसके अनुसार आचरण करता है ।

शिष्य मौन रहकर सुने, फिर हुंकार-ऐसा कहे । उसके बाद 'यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं' इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने । अगर शंका हो तो पूछे फिर मीमांसा करे । तब उत्तरोत्तर गुणप्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है । तत्पश्चात् वह चिन्तन-मनन आदि के बाद गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे । ये गुण शास्त्र सुनने के कथन किए गए हैं ।

प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहे । दूसरी में सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति कहे । तीसरी वाचना में सर्व प्रकार नय-निक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या करे । इस तरह अनुयोग की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादन की है । यहाँ श्रुतज्ञान का विषय, श्रुत का वर्णन, परोक्षज्ञान का वर्णन हुआ । इस प्रकार श्रीनन्दी सूत्र भी परिसमाप्त हुआ ।

नंदीसूत्र (चूलिका-१) मूलसूत्र का
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

परिशिष्ट-१-अनुज्ञानन्दी

सूत्र - १

वह अनुज्ञा क्या है ? अनुज्ञा छह प्रकार से है–नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । वह नाम अनुज्ञा क्या है ? जिसका जीव या अजीव, जीवो या अजीवो, तदुभय या तदुभयो अनुज्ञा ऐसा नाम हो वह नाम अनुज्ञा ।

वह स्थापना अनुज्ञा क्या है ? जो भी कोई काष्ठ, पत्थर, लेप, चित्र, ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम ऐसे एक या अनेक अक्ष आदि में सद्भाव या असद्भाव स्थापना करके अनुज्ञा होती है, वह स्थापना अनुज्ञा ।

नाम और स्थापनामें क्या विशेषता है ? नाम यावत्कथित है, स्थापना इत्वरकालिक या यावत्कथित दोनों होती है ।

वह द्रव्यानुज्ञा क्या है ? द्रव्यानुज्ञा आगम से और नोआगम से है । वह आगम द्रव्यानुज्ञा क्या है ? जिसका अनुज्ञा ऐसा पद शिक्षा, स्थित, जीत, मित, परिजित, नामसम, घोषसम, अहिनाक्षर, अनल्पाक्षर, अव्याधिअक्षर, अस्खलित, अमिलित, अवच्चामिलित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कंठौष्ठविप्रमुक्त, गुरुवचनप्राप्त, ऐसे वाचना, पृच्छना, परावर्तना, धर्मकथा और अनुप्रेक्षा से अनुवयोग द्रव्य ऐसे करके नैगम नयानुसार एक द्रव्यानुज्ञा, दो, तीन, ऐसे जितनी भी अनुपदेशीत हो उतनी द्रव्यानुज्ञा होती है । इसी तरह व्यवहारनय से एक या अनेक द्वारा अनुपदिष्ट वह आगम से एक द्रव्यानुज्ञा को कोई कोई मान्य नहीं करते हैं । तीनों शब्द नय से जो जानता है वह आगम से द्रव्यानुज्ञा समझना ।

नो आगम से द्रव्यानुज्ञा के तीन भेद हैं । ज्ञशरीर से, भव्य शरीर से और उभय से व्यतिरिक्त । वह ज्ञशरीर द्रव्यानुज्ञा क्या है ? पद में रहे हुए अविकार को जो ज्ञानरूपी शरीर से जाने वह ज्ञशरीरद्रव्यानुज्ञा । भव्य शरीर द्रव्यानुज्ञा क्या है ? जैसे कि-किसे पता कि यह मधुकुम्भ है या घृतकुम्भ ? उभयव्यतिरिक्त द्रव्यानुज्ञा क्या है ? वह तीन प्रकार से है । लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तर । लौकिक द्रव्यानुज्ञा तीन प्रकार से है-सचित्त, अचित्त और मिश्रा राजा, युवराज आदि जो हाथी वगैरह के जो देते है वह सचित्त द्रव्यानुज्ञा, आसन-छत्रादि देवे तो वह हुई अचित्त अनुज्ञा और अम्बाडी सहित हाथी या चामर सहित अश्व आदि देवे तो वह हुई मिश्र अनुज्ञा ।

ईसी तरह कुप्रावचनिक और लोकोत्तर द्रव्यानुज्ञा के भी सचित्त-अचित्त एवं मिश्र यह तीनों भेद समझ लेना

वह क्षेत्रानुज्ञा क्या है ? क्षेत्र का जो अवग्रह देता है वह क्षेत्रानुज्ञा हुई । ईसी तरह काल से दी जाती अनुज्ञा कालानुज्ञा है ।

भाव से अनुज्ञा के तीन भेद हैं–लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तर । पहेले दो भेद में क्रोधादि भाव आते हैं और लोकोत्तर में आचार आदि की शिक्षा समाविष्ट होती है ।

सूत्र – २-४

ऋषभसेन नामक आदिनाथ प्रभु के शिष्यने अनुज्ञा विषयक कथन किया उसका अनुज्ञा, उरीमणी, नमणी... इत्यादि बीस नाम है ।

परिशिष्ट-२-जोगनन्दी

ज्ञान के पाँच भेद हैं–आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल । उसमें चार ज्ञानों की स्थापना, उद्देश, समुद्देश एवं अनुज्ञा नहीं है । श्रुतज्ञान के उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञा के अनुयोग प्रवर्तमान है । यदि श्रुतज्ञान का उद्देश आदि है तो वह अंगप्रविष्ट के हैं या अंगबाह्य के ? दोनों के उद्देश आदि होते हैं । जो अंगबाह्य के उद्देश आदि है तो वह कालिक के हैं या उत्कालिक के ? दोनों के उद्देश आदि है । क्या आवश्यक के उद्देशक आदि है या आवश्यक व्यतिरिक्त के ? दोनों के उद्देश आदि है । क्या आवश्यक में भी सामायिक आदि छह उद्देश-समुद्देश और अनुज्ञा है । अर्थात् ''दसवेयालिय'' से लेकर ''महापच्चक्खाण'' पर्यंत के उत्कालिक सूत्र और ''उत्तरज्झयणं'' से लेकर ''तेयग्गिनिसग्गाणं'' तक के कालिक सूत्रों के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा प्रवर्तमान है । ईसी तरह अंगप्रविष्ट में भी ''आयार'' से ''दृष्टिवाद'' तक के सूत्र के उद्देश-समुद्देश और अनुज्ञा होती है ।

क्षमाश्रमण अर्थात् साधु के पास से सूत्र-अर्थ एवं तदुभव के उद्देश-समुद्देश एवं अनुज्ञा के लिए मैं साधु-साध्वी को सूचित करता हूँ ।

४४ नंदीसूत्र-चूलिका-१-का
मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ-ક્ષમા-લલિત-સુશીલ-સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

४४

नंदीसूत्र

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:- (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397